नारी जीवन जागरण

—सौभाग्यमल जैन

नृवंशवेत्ताओं ने मानव वंश को कुछ युगों में विभाजित करके उन युगों का नामसंस्करण आदि मानव, पाषाणयुग, नव पाषाणयुग, ताम्र युग किया है। इन युगों की पुरातत्वीय सामग्री में पाषाण के अस्त्र, प्रागैतिहासिक शैलचित्र आदि से पाषाण आदि युगों के मानव-जीवन का अनुमान किया जा सकता है किन्तु आदिमानव कैसा था? इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। कहा जाता है कि आदिमानव पशु जैसा था। उसके पास भाषा नहीं थी। उसके पश्चात वह जंघाओं के बल पर चलने लगा। वह एक प्रकार से भोजन एकत्र करने वाला (Food gatherer) था। उसने पाषाण युग में प्रवेश किया, पाषाण के अस्त्र-शस्त्र बनाये, फिर नव-पाषाण युग में प्रवेश करके उन पाषाण के अस्त्र-शस्त्रों को सुधारा, अधिक तीक्ष्ण किया और तत्पश्चात् लौह (ताम्र) युग में प्रवेश करके लोहे के अस्त्र-शस्त्रादि का निर्माण किया अपनी रक्षा के लिये तब उसने कबीलों के साथ रहना शुरू किया, खेती प्रारंभ की, ग्राम भी बसाये। उस युग में उसकी सहचरी नारी का जीवन क्या था? यह कहना मुश्किल है। कुछ शैलचित्रों से यह अनुमानित किया जा सकता है कि उस समय उन्मुक्त जीवन था, पारिवारिक रिश्ते नहीं थे।

जैन विचारकों ने कालप्रवाह को अनादि माना तथा यह मत व्यक्त किया है कि उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के ६—६ आरे में क्रमशः सृष्टि के जीवन में उत्थान—पतन हुआ करता है। अवसर्पिणी काल के प्रथम दो आरे तथा तीसरे आरे के अधिकांश काल में भोग युग रहता है। कर्म की आवश्यकता नहीं होती थी। मानव की आवश्यकता "कल्पवृक्षों" से पूर्ण हो जाती थी। यदि इसे अलंकारिक भाषा मानें तो सारांश यह निकलता है कि उस युग के मानव की आवश्यकता अत्यन्त अल्प होती थी, प्रकृति माता (उसे कल्पवृक्ष ही कहा जा सकता है) पूरी कर देती थी। उस युग में पुरुष और नारी में वैवाहिक संस्था का अविर्भाव नहीं हुआ था, अपितु पिता-माता की संतान बालक-बालिका यौन सम्बन्ध स्थापित कर लेती थी। यदि हम वैदिक साहित्य में प्राप्त संवाद (यम-यमी संवाद) की ओर विचार करें तो उस युग के जीवन का चित्र मालूम पड़ सकता है। चौदहवें कुलकर नाभिराय के सुपुत्र ऋषभदेव ने मानव सभ्यता की नींव डाली, विवाह संस्था की स्थापना की, मानव जाति को कर्म का उपदेश दिया। मानव ने संस्कृति के क्षेत्र में प्रवेश किया तथा परिवार का विचार साकार हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था—

Customs of one age of one yug have not the customs of another as yug comes after yug they have to change.

मानव जीवन के कार्य-कलाप में परिवार का महत्त्व है। परिवार में दो महत्वपूर्ण इकाई–पुरुष तथा महिला है।

चीनी संत कन्फ्यूशियस ने कहा था—

"परिवार तेज चलते हुए रथ के समान है। परिवार के सभी सदस्य अश्व हैं। एक अश्व की निरीहता भी रथ की गति में बाधक होती है। कर्म ही रथ का सारथी है, अर्थ (धन) ही रथ के पहिए हैं सामाजिक जीवन ही रथ का मार्ग है और सुख, शान्ति और मोक्ष ही रथ का विरामस्थल है। परिवार तेज चलते हुए रथ के समान है।"

तात्पर्य यह है कि यम-यमी संवाद के पूर्व का काल या ऋषभदेव के संदेश के पूर्व का काल लगभग एक बिन्दु जैसा लगता है। उस समय का नारी जीवन भी कोई जीवन था जिसमें नारी केवल पुरुष की भोग-लिप्सा की एक सामग्री मान ली गई थी किन्तु ऋषभदेव ने एक क्रांतिकारी कार्य किया और यहाँ से मानव के सुसंस्कृत होने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। यही कारण है कि जहाँ पुरुष के लिये ऋषभदेव ने ७२ कलाओं की माहिति आवश्यक मानी, वहीं नारी के लिए भी ६४ कलाओं की माहिति जरूरी समझी। उनकी दोनों पुत्री (ब्राह्मी और सुन्दरी) क्रमशः अक्षरविद्या तथा अंकविद्या में निष्णात हुईं। दोनों पुत्र भरत तथा बाहुबलि ने जो मानव समाज के सम्मुख आदर्श उपस्थित किया था, वह उनके अत्यन्त सुसंस्कृत जीवन का ज्वलन्त उदाहरण है। संक्षेप में यह कि यही वह बिन्दु है जहाँ से नारी का एक स्वतन्त्र अस्तित्व प्रारम्भ होता है। नारी-जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। हम भगवान ऋषभदेव या अन्य तीर्थंकरों के काल की नारी जागरूकता की कथा को एक तरफ रख दें क्योंकि इतिहास की पहुँच वहाँ तक नहीं हुई तब भी वैदिककालीन, उपनिषदकालीन, पार्श्वनाथ, महावीरकालीन (जिनकी ऐतिहासिकता निर्विवाद है) स्थिति पर ही नारी जागरण के प्रश्न को चर्चा का विषय बनायेंगे तो निःसन्देह यह परिणाम निकलता है कि वैदिक काल में नारी का स्थान समाज में महत्त्वपूर्ण था, शिक्षा प्राप्ति का पूरा अधिकार था, साहित्य रचना में भी उनका योगदान था। उदाहरणस्वरूप लोपामुद्रा, घोषा का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने वेदों के कुछ मन्त्रों की रचना की थी। उपनिषद्काल में मैत्रेयी संवाद, गार्गी आदि के प्रश्न (जो राजा जनक की सभा में किये गये थे) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं जिससे उनके विदुषी होने का संकेत मिलता है। यह भी सत्य है कि जहाँ इस काल में इस प्रकार की विदुषी महिलाओं का जिक्र है वहीं इसी काल में महिलाओं के प्रति अवज्ञा का भाव भी प्रारम्भ हो गया था। शिक्षा के क्षेत्र में उनका अधिकार कम किया जाने लगा, उनके धार्मिक अधिकार पर अंकुश लगा, वेद मन्त्रों का उच्चारण महिलाओं के लिए प्रतिबन्धित कर दिया गया। जैन-बौद्ध युग के प्रारम्भिक काल तक नारी शिक्षा लगभग बन्द सी होती गई, केवल उसको कुशल गृहिणी ही बनना पर्याप्त माना जाने लगा किन्तु जैन परम्परा (भगवान पार्श्वनाथ तथा भगवान महावीर के संघ) में क्रमशः ३८ हजार तथा ३६ हजार भिक्षुणियों का संघ था जो क्रमशः सती पुष्पचूला एवं सती चन्दना के नेतृत्व में था। तात्पर्य यह कि जैन परम्परा में महिलाओं के धार्मिक आचरण करने या प्रव्रजित होने या शास्त्राभ्यास करने आदि पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था, वह भी पुरुष की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भांति निःश्रेयस की प्राप्ति हेतु उसी उत्साह से सतर्क थीं। जैन आगम में जयन्ती श्राविका के विदुषी होने का जिक्र है। भगवान महावीर की माता त्रिशला स्वयं विदुषी थीं। हालांकि भगवान बुद्ध को अपने संघ में भिक्षुणी को स्थान देने में काफी हिचकिचाहट थी। वे अपनी मौसी गौतमी को भी अपने शिष्य आनन्द के आग्रह से दीक्षित करने के बाद भी बड़े भयभीत थे। यह सत्य है कि ब्राह्मण परम्परा में सूत्र तथा स्मृतिकाल में महिलाओं पर प्रतिबन्ध अधिक कड़े होते गये। कटु सत्य है कि महिलाओं के सम्बन्ध में निन्दात्मक उल्लेख, टिप्पणियाँ आदि भी जैन परम्परा में कम नहीं हैं किन्तु यदि हम गहराई से सोचें तो उनके कर्ता ने महिलाओं के आकर्षक सौन्दर्य से कामुक साधु की रक्षा के ख्याल से स्त्री-चरित्र को बदनाम करने का प्रयत्न किया है। संस्कृत में कहा गया है—

"घृतकुम्भसमा नारी, तप्तांगारसमो पुमान्"।

नारी घी के घड़े के समान है तथा तपते हुए अंगारे के मुताबिक पुरुष होता है। यह कैसे सम्भव है कि केवल महिला ही सब दोषों की जननी हो गई। इस सम्बन्ध में डॉ० जगदीशचन्द्र जैन ने अपनी पुस्तक "जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज" पृष्ठ २४६ में बृहत्संहिता के कर्ता वराहमिहिर का हवाला देकर लिखा है :—

"जो दोष स्त्रियों में बताये जाते हैं वे पुरुषों में भी मौजूद हैं। अन्तर इतना है कि स्त्रियां उन्हें दूर करने का प्रयत्न करती हैं, जबकि पुरुष उनसे बेहद उदासीन रहते हैं। विवाह की प्रतिज्ञाएँ वर-वधू दोनों ही ग्रहण करते हैं, लेकिन पुरुष उन्हें साधारण मानकर चलते हैं, जबकि स्त्रियाँ उन पर आचरण करती हैं। काम-वासना से कौन अधिक पीड़ित होता है? पुरुष, जो वृद्धावस्था में भी विवाह करते हैं।

पुरुष के लिए यह कहना कि स्त्रियाँ चंचल होती हैं, दुर्बल होती हैं, और अविश्वसनीय होती हैं, धृष्टता और कृतघ्नता की चरम सीमा है। इससे कुशल चोरों की याद आती है जो पहले तो अपना लूटा हुआ माल अन्यत्र भिजवा देते हैं और फिर निरपराधो पुरुषों को चुनौती देते हुए उनसे अपने धन की मांग करते हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञातव्य है कि महिलाओं ने पुरुष को पतन के मार्ग से उन्मुख करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भोजराज उग्रसेन की कन्या राजीमति ने भगवान अरिष्टनेमि के वैराग्य अवस्था का अनुगमन कर लिया था। रथनेमि तथा राजीमति गिरनार पर्वत पर तपस्या में लीन थे। राजीमति के एक गुफा में प्रवेश करने पर रथनेमि ने उस पर आसक्त होकर पतन का मार्ग अपनाना चाहा किन्तु राजीमति की फटकार के कारण वह सजग हो गया तथा पतन से बच गया। और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। संभवतः ऐसी नारी-रत्न के लिये ही एक प्राचीन विद्वान ने कहा था—

"यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"।

जहाँ नारी की पूजा होती है, उसे आदर दिया जाता है वहाँ देवता रमण करते हैं। तात्पर्य यह है कि पुरुष हो चाहे नारी यदि विवेकशील है और उनका हृदय और आचरण पवित्र है तो परिवार, समाज और राष्ट्र सुखी होगा। यह आवश्यक नहीं है कि केवल महिला का हृदय ही कलुषित होता है इस कारण उनका आचरण सदैव अपवित्र होता है। एक चीनी लोकोक्ति में कहा गया है—

"अगर तुम्हारा हृदय पवित्र है तो तुम्हारा आचरण भी सुन्दर होगा, तुम्हारा आचरण सुन्दर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है तो तुम्हारे परिवार में शांति रहेगी, यदि तुम्हारे परिवार में शांति है तो राष्ट्र में सुव्यवस्था होगी और यदि राष्ट्र में सुव्यवस्था है तो सम्पूर्ण विश्व में शांति और सुख का साम्राज्य होगा।"

देश में एक समय आया जबकि नारी पर असीमित प्रतिबन्ध लग गये, उनका पर्दे में रहना आवश्यक हो गया, केवल यही नहीं जो महिलायें घर से बाहर निकलतीं उनके सम्बन्ध में उनकी निम्न सामाजिक स्थिति का अनुमान किया जाता था। नारी शिक्षा समाप्तप्राय थी। नारी की इस दुरवस्था का प्रारम्भ कब हुआ ? यह कहना मुश्किल है। कुछ लोग देश में मुस्लिम आक्रमण के पश्चात् से इसका प्रारम्भ मानते हैं। जो भी हो, किन्तु यह एक वास्तविकता थी। स्थिति केवल यहीं तक नहीं थी अपितु नारी को मारा-पीटा, अपमानित किया जाता था। इसी कारण स्व० राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने नारी की स्थिति का चित्रण निम्न शब्दों में किया था :—

अबला जीवन, हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध, और आँखों में पानी॥

समय के परिवर्तन के साथ उपरोक्त स्थिति में परिवर्तन आया। नारी ने अंगड़ाई ली, जागरण हुआ। उर्दू के एक कवि ने कहा था—

"फर्ज औरत पर नहीं है, चार दीवारी की कैद।
हो अगर जब्ते नजर की और खुद्दारी की कैद॥

अब तो नारी भी पुरुष के समकक्ष होकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अग्रसर है। उसमें से पुरुष से निम्न स्थिति के होने का भाव समाप्त होता जा रहा है। हालांकि जैन परम्परा में नारी पर धार्मिक उपासना, साधना आदि पर कभी कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा जैसा कि उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है किन्तु व्यवहार में जैन परिवारों में भी नारी के प्रति समान व्यवहार कम देखने में आता था। धर्म के क्षेत्र में समान रूप से अपनी उपासना या साधना में भाग ले सकने के बावजूद भी घरों में समानता का व्यवहार नहीं होता था। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि भगवान पार्श्वनाथ के काल में भी साधना के लिये महिलाएँ साध्वी दीक्षा ग्रहण करती थीं। भगवान महावीर के काल में महासती चन्दनबाला के पूर्व जीवन का वृत्त बताता है कि उसको बाजार में विक्रय किया गया था। यह सामाजिक विकृति का परिणाम था। भगवान महावीर ने चंदनबाला का उद्धार किया, उसके हाथ से भिक्षा ग्रहण की तथा उपयुक्त समय पर साध्वी दीक्षा प्रदान करके अपने विशाल संघ की प्रमुख नेत्री बनाया। भगवान पार्श्वनाथ तथा भगवान महावीर के संघ में साध्वियों की संख्या बहुत थी। इतने विशाल संघ का नेतृत्व साध्वी को सौंपा जाना उनकी विद्वत्ता तथा कार्यक्षमता का स्पष्ट प्रमाण है। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के संघ में साध्वियों की उपेक्षा उनके निर्वाण के कितने समय पश्चात् प्रारम्भ हुई तथा उसके क्या कारण थे ? इन प्रश्नों के संबंध में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। भगवान के निर्वाण के पश्चात् तथाकथित कुछ ग्रन्थों में जो प्रावधान किये गये पुरिस-जेट्ठा आदि वाक्य का उदाहरण दिया जा सकता है इस प्रकार के प्रावधान से जहाँ साधु समुदाय में साध्वियों के प्रति निम्न स्थिति का भाव आया वहीं साध्वियों में हीनत्व की भावना जागृत हुई और साधु समुदाय ने उस हीनत्व भाव को स्थायी रूप देने का प्रयत्न किया। गत कुछ वर्षों में साध्वी समुदाय में भी पुनर्जागरण का भाव जगा है और उसी के परिणामस्वरूप सन् १९६४ में अधिकारी मुनि सम्मेलन के समय से या उसके कुछ पूर्व से "चन्दनबाला श्रमणी संघ" की स्थापना हुई है जिसकी अध्यक्षा तपोमूर्ति परम विदुषी महासती सोहनकुंवरजी थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्हीं महासती सोहनकुँवरजी के पास उदयपुर निवासी श्री जीवनसिंहजी बरडिया की सुपुत्री श्री सुन्दरकुमारी ने अपनी लघु वय (केवल १४ वर्ष) में ही दीक्षा ग्रहण की और उनका दीक्षा नाम महासती पुष्पवती जी रखा गया। विदुषी साध्वी पुष्पवती जी ने दीक्षा के पश्चात् से साहित्य, धर्म, दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों, जैन आगमों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप वह साधना के क्षेत्र के साथ विद्या के क्षेत्र में भी सतत प्रगति करती रहीं। उन्होंने अपने साधनाकाल में ही कई ग्रंथों का प्रणयन तथा संपादन किया है। यह एक मणिकांचन योग है कि महासती पुष्पवती के संसार पक्ष के सहोदर साहित्य वाचस्पति श्री देवेन्द्र मुनिजी हैं जो उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी के विद्वान शिष्य हैं। मुझे महासती जी के दर्शन श्रद्धेय देवेन्द्र मुनिजी की कृपा से ही हुए थे। महासती जी के सौम्य मुख मण्डल पर अपूर्व शान्ति तथा साधना की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। महासती जी के साधनाकाल को आगामी १२-२-१९८८ को अर्धशताब्दी जितना लम्बा काल हो जावेगा।

मेरी हार्दिक कामना है कि महासती जी चिरायु होकर अपनी आत्म-साधना में सलग्न रहें तथा जिनशासन की प्रभावना करती रहें।

पुष्प-सूक्ति-सौरभ————————————

- सत्य संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। संसार के समस्त बलों का समावेश सत्य में हो जाता है।
- सत्य का सर्वांगीण स्वरूप समझने के लिए दृष्टि का शुद्ध, स्पष्ट और सर्वांगीण होना बहुत आवश्यक है।
- सत्य को भली-भाँति समझने के लिए मनुष्य को सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान की अग्नि में अविद्या को भस्म करना पड़ता है, तभी हृदय में सत्य का सूर्य उदित होता है।
- जैसे नमक की डली और नमक दोनों अलग-अलग नहीं हैं, एक ही हैं, वैसे ही सत् और सत्य दोनों एक ही हैं।
- सत् वस्तु सत्य से व्याप्त है, सत् में सत्य ओतप्रोत है। सत् और सत्य दोनों में भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं।
- जो स्वयं तीनों काल में रहे, जिसके अस्तित्व के लिए दूसरे की अपेक्षा न रहे, उसका नाम सत्य है।
- सत्य स्वयं विद्यमान रहता है, उसके ही आधार पर अन्य सारी चीजों का अस्तित्व निर्भर है।

————————————**पुष्प-सूक्ति-सौरभ**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org